



गीता में वर्णित वर्णव्यवस्था आधुनिकता के संदर्भ में

एसोसियेट प्रोफ़ेसर भारतसिंह एस. डामोर

एस.के.यु.बी समिति (डभोई) आर्ट्स एवं श्रीमती अेन.सी.झवेरी कोमर्स

कोलेज, पीपलीया

ता. वाघोडिया, जि. वड़ोदरा

Mo. No. 9998126146

E mail : bsdamor72@gmail.com

प्रस्तावना - भारतीय आश्रमव्यवस्था एवं वर्णव्यवस्था चतुर्विधि पुरुषार्थ प्राप्ति की उत्कृष्ट जीवनप्रणाली है | भारत में यह व्यवस्था अत्यन्त प्राचीनतम है | ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मानवसृष्टी का विकासक्रम बताते हुए कहा गया है कि -
'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्वः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत् ॥ (ऋग्वेद १०-९०-१२)

अर्थात् 'ब्राह्मण इस विराट पुरुष के मुख से, त्रक्षिय उसकी भुजाओं से वैश्य जाँघो से और शूद्र पैरों से निकला हैं |' इसलिये हमें मानना पड़ेगा कि वर्णव्यवस्था हमारे देश में वैदिककाल से प्रचलित है | वैदिककालीन एवं महाभारत तथा गीता में वर्णित वर्णव्यवस्था का आधार जन्म नहीं, अपितु गुण और कर्म थे ये बात निर्विवादित है | स्मृतिकाल में लोगों ने इस व्यवस्था को विकृतरूप दे दिया था, इसलिये वह अनर्थों की जन्मदात्री के रूप में हमारे सामने उभरकर आई थी | मनुस्मृति के विधान सुंदर तथा तत्कालीन समाज के लिये उपयोगी भी थे, किन्तु अर्वाचीन समाज के लिये उन्हें बिना किसी परिवर्तन के लागु करना उचित नहीं है | वर्णव्यवस्था के दो सिद्धान्त हैं, एक 'जन्मनावर्ण' का और दूसरा 'कर्मणावर्ण' का सिद्धान्त | वास्तव में जन्मना वर्ण का सिद्धान्त हमारे पतन और अधोगति का कारण है | मनुष्य पर मनुष्य के अत्याचार की कहानी भी इसी जन्मना वर्ण के सिद्धान्त की देन है | जहाँ

मनुष्य एक वर्ण में पैदा होने के कारण अपने को श्रेष्ठ मानता हुआ सारे अधिकार अपने पास ही सुरक्षित कर लेता है और दूसरे पर निम्न वर्ण में पैदा होने की छाप लगाकर मानो उसे सतत रोंदने का अधिकार पा लेता है । भारतीय प्राचीन चितकों को इस सत्य का बोध था, इसलिये उन्होंने समाज के सुचारु, संचालन के लिये गुण और कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था हमें प्रदान की थी । इस कल्याणकारी समाजरचना के कारण ही हमारा समाज इतने सहस्र वर्षों से बचे रहने में समर्थ हुआ, जब कि विश्व की अन्य प्राचीन जातियाँ अपनी समाज व्यवस्था की असफलता के कारण समाप्त हो गयी । भारतीय समाज में भी स्मृतिकाल दौरान रुग्णावस्था का समय रहा है । स्मृतियों के द्वारा व्यवस्था के नाम पर अव्यवस्था ही अधिक बढ़ी है । जब से हमने 'कर्मणावर्ण' के बदले 'जन्मनावर्ण' पर जोर दिया है तभी से हमारा सारा सामाजिक ढाँचा चरमरा ने लगा है ।

(१) गुण तथा कर्मों के आधार पर वर्ण विभाजन - वर्ण का सामान्य अर्थ 'जाति' लिया जाता है । 'जाति' शब्द 'जनी प्रादुर्भावे' धातु से बनता है जो जन्म से जाति को सिद्ध करता है । 'कर्म' शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से बनता है, जिसका अर्थ कृति होता है । भगवान श्रीकृष्ण के कथनानुसार -

'सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ (गीता १४ - ५)

अर्थात् हे अर्जुन ! सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बाँधते हैं । इस गुणों के संग के कारण जीवात्मा अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेता है । जैसे कि -

'कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनि जन्मसु' । (गीता १३-२१)

गुणों के कारण जिस वर्ण में जन्म होता है, उन गुणों के अनुसार ही उस वर्ण के कर्म स्वाभाविक सहज होते हैं । जैसे ब्राह्मण के लिये शम, दम आदि, क्षत्रिय के लिये शौर्य, तेज आदि, वैश्य के लिये कृषि, गौरक्षा आदि और शूद्र के लिये सेवा-आदि कर्म स्वतः स्वाभाविक होते हैं । तात्पर्य है कि चारों वर्णों को इन कर्मों को करने में परिश्रम नहीं होता, क्योंकि गुणों के अनुसार स्वभाव और स्वभाव के अनुसार उनके लिये कर्मों का विधान है । इसलिये इन कर्मों में उनकी स्वाभाविक

ही रुचि होती है। स्वामी आत्मानंदजी के मतानुसार 'गुण' मानसिक क्रिया के हेतु है और कर्म भौतिक क्रिया के हेतु है। इन दोनों के विभाजन और परस्पर मेल से ही चार वर्ण बने हैं। ब्राह्मणवर्ण में सत्त्वगुण की प्रधानता और रजोगुण दबा होता है। क्षत्रियवर्ण में रजोगुण की प्रबलता तथा सत्त्वगुण दबा रहता है। वैश्यवर्ण में रजोगुण प्रधान तथा तमोगुण दबा रहता है। शूद्रवर्ण में तमोगुण की प्रबलता तथा रजोगुण दबा रहता है। प्रत्येक मनुष्य में यही तीनों गुण होते हैं, अन्तर केवल इतना होता है कि किसी में एक गुण की प्रधानता होती है तो अन्य में दूसरे गुण की प्रधानता रहती है। ये गुण ही व्यक्ति की मानसिकता का निर्माण करते हैं। इसलिये ये चार वर्ण केवल भारतवासियों के लिये नहीं, अपितु विश्व की प्रत्येक मानवता के लिये हैं। उपर्युक्त कथन से सुस्पष्ट होता है कि मनुष्य में न्यूनधिक मात्रा में चारों वर्णों के ही गुण पाये जाते हैं, परन्तु जिसमें जिस वर्ण के गुणों की प्रधानता होती है, उसे उसी वर्ण का कहा जाता है। पूज्य पाण्डुरंग शास्त्रीजी के मतानुसार "कोई भी सुसंस्कृत समाज चार वर्णों से होता है। इन भिन्न-भिन्न वर्णों की भिन्न-भिन्न चार शक्तियाँ होती हैं - जैसे बुद्धिशक्ति, शस्त्रशक्ति, वित्तशक्ति और श्रमशक्ति या कलाशक्ति। वास्तव में भौतिक जीवन में सभी कलायें शूद्र वर्ण के हाथ में हैं। किसी भी सुसंस्कृत समाज में इन चारों शक्तियों विकसित होना आवश्यक हैं। मानवीय विकास के लिये इन शक्तियों का समन्वित होना जरूरी भी है।" भगवानने स्वधर्म - निजकर्तव्य का बोध कराने के लिये ही अर्जुन को निमित्त बनाकर मानवमात्र को गीतामृत रूपी प्रसाद दिया है। भगवानने गीता में स्पष्टीकरण किया है कि -

'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।' (गीता १८-४८)

अर्थात् हे अर्जुन, दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म को त्यागना नहीं चाहिए। विष्णुपुराण में कहा है कि 'अपना कर्म छोड़कर 'हरि हरि' कहते हुए बैठे रहनेवाले लोग हरि के विरोधी और पापी हैं। क्योंकि श्रीहरि का जन्म ही धर्म रक्षणार्थ होता है।' इस तरह यहाँ पर गुण और कर्म पर आधारित वर्णव्यवस्था पर जोर दिया गया है।

(२) गीता की वर्णव्यवस्था - महाभारत तथा गीताकालीन वर्णव्यवस्था गुण एवं कर्म पर आधारित हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का कथन है कि -

‘चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥’ (गीता ४ - १३)

अर्थात् ‘ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र- इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है । इस प्रकार उस सृष्टि-रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझे अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जाना ’ यहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण के कथन में विरोधाभास प्रतीत होता है, क्योंकि स्वयं वे कहते हैं कि इन चारों वर्णों की सृष्टि मैंने की है, भले ही मैं उनका कर्ता हूँ, पर इसका वास्तव में मुझे अकर्ता और अव्यय समझना चाहिए । इस बात का समाधान करते हुए स्वामी आत्मानन्दजी कहते हैं कि - “भगवानने अपनी प्रकृति के द्वारा गुण और कर्म रच दिये इस दृष्टी से तो वे कर्ता हो गये, पर वर्णों की रचना का काम गुण और कर्म का है इस दृष्टि से भगवान अकर्ता हो गये ।” जैसे संविधान का पालन करते हुए न्यायधीश हत्यारे को फाँसी की सजा सुना देते हैं । यहाँ पर एक दृष्टी से न्यायधीश कर्ता मालूम पड़ता है, पर दूसरी दृष्टी से देखने से लगता है कि न्यायधीश वास्तव में संविधान का पालन कर रहा है । फाँसी की सजा का कर्ता तो वह अपराधी स्वयं है । इसी प्रकार भगवानने गुण-कर्म बना दिये- यहाँ तक तो वे कर्ता दिखायी देते हैं । पर इन गुण कर्मों के द्वारा जो वर्ण बनता है, वह तो स्वयं व्यक्ति बनता है । चाहे तो वह ब्राह्मण या शूद्र वर्ण प्राप्त कर ले, इसमें भगवान अकर्ता हैं । वर्णों के निर्वाचन में मनुष्य ही कर्ता हैं । इसलिए वर्णों के भेदभाव का दोष भगवान पर नहीं मढ़ा जा सकता । वे तो वास्तवमें साक्षी हैं । अपने इस साक्षित्व को व्यक्त करने के लिये ही भगवान ने अपने लिये ‘अव्यय’ पद का प्रयोग किया है । साक्षी वही हो सकता है, जिसमें कोई विकार नहीं होता । बालगंगाधर तिलक भी इस बात का समर्थन करते हुए अपने गीता रहस्य में लिखते हैं कि “मनुष्य के साथ ही समाज और समाज के साथ प्रत्येक मनुष्य परमेश्वर ने ही उत्पन्न किया होने के कारण जिसको जितना बुद्धिबल, सत्ताबल, द्रव्यबल और शरीरबल स्वभावतः ही प्राप्त हो, अथवा स्वधर्म के द्वारा प्राप्त किया जा सकता हो, उस मात्र में जगत् का यथाशक्ति धारणपोषण करने का अधिकार चातुर्वर्ण्योदि तथा अन्य गुणकर्म विभागरूप सामाजिक व्यवस्था के द्वारा प्रत्येक को जन्म से ही प्राप्त होता है । इससे

स्पष्ट होता है कि तिलकजी जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था की तरफदारी करते हैं।”

(३) स्वधर्म का स्थूल विभाजन ही वर्ण - स्वधर्म को गीता में सहजकर्म, स्वकर्म, स्वभावजकर्म, स्वभावनियत-कर्म, स्वभावप्रभवकर्म आदि कहकर पुकारा है। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का स्वधर्म उसके स्वभाव तथा रुचियों से निर्मित होता है। स्वधर्म का अति स्थूल विभाजन ही 'वर्ण' है। एक ही वर्ण में असंख्यों व्यक्ति हो सकते हैं, उन सबकी व्यक्तिगत रुचियों में भिन्नता हो सकती है, पर उनका लक्ष्य एक ही होता है। सारा संसार त्रिगुणात्मक है - सत्त्व, रज और तम की शक्तियों के विभिन्न मेल से यह निर्मित हुआ है। इन तीनों के चार प्रकार के विशेष मेल को 'वर्ण' कहते हैं। और इस वर्ण के मूल आधार पर हिन्दुओं ने स्वधर्म की रचना की है। इस तरह हिन्दु चार वर्णों को मान्यता देते हैं। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि -

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ (गीता २-

३१)

अर्थात् 'अपने क्षत्रियधर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है।' अर्जुन जन्म से क्षत्रिय था और युद्धकला की उसमें प्रतिभा भी थी। इसलिये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तू अपने स्वधर्म को देखो। अन्याय का प्रतीकार करना ही तुम्हारा स्वधर्म है। दुर्योधन का पक्ष पूर्णतः अन्याय का था, उसमें भी भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य इस अन्यायपूर्ण पक्ष का साथ दे रहे थे। वे भले ही व्यक्तिगत द्रष्टि से धर्मपरायण हों, पर उनकी धर्मपरायणता यदि अधर्म का पोषण करती है, तो वह समाज के लिये हानिकारक है और उसका शमन होना चाहिये।

आजकल वर्ण-व्यवस्था का ढाँचा चरमरा गया है। इसलिये वर्णधर्म के आधार पर स्वधर्म का निर्णय अधिकाधिक कठिन होता जा रहा है। जब समाज में वर्णधर्म की प्रतिष्ठा थी, तब स्वधर्म का निर्णय और तदनुकूल आचरण सुगम था। पुराकाल में ब्राह्मणवर्ण में उत्पन्न लड़का पूजा-पाठ और पौरोहित्य कर्म में

सीधा चला जाता था, उसकी शिक्षा-दीक्षा भी तदनुरूप होती थी | क्षत्रियवर्ण में उत्पन्न बालक राजा की सेना में भरती हो जाता था | वैश्यवर्ण का लड़का खेती, गोपालन या व्यवसाय में लग जाता था और शूद्रवर्ण में जन्मा बालक बचपन से ही शरीरश्रम से होनेवाले कार्यों की ओर झुक जाता था | पर जब यह धारणा कट्टर हो गयी कि व्यक्ति का वर्ण बदल ही नहीं सकता, तब फल स्वरूप 'अधिकारवाद' का विष समाज शरीर को विषाक्त करने लगा | अपने को उच्चवर्ण का माननेवाले लोग वृत्तियों से हीन हो गये, परन्तु उन्होंने ने अपने वर्णप्रदत्त अधिकारों को नहीं छोड़ा, बल्कि उन अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए वे जनसाधारण का शोषण करने लगे | इससे वर्णव्यवस्था डगमगा गयी और आज जो हम समाज में इतनी अव्यवस्था देखते हैं, उसके लिये उच्चवर्णों का असंतुलित वर्तन ही उत्तरदायी हैं |

(४) वर्ण का आधार आचरण है, जन्म नहीं - ब्राह्मणत्व ही ब्राह्मणवर्ण का आधार है, क्षत्रियत्व क्षत्रियवर्ण का, वैश्यत्व वैश्यवर्ण का और शूद्रत्व शूद्रवर्ण का आधार है। गीता यही बताती है कि -

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप |

कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ||

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च |

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ||

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् |

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ||

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् |

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ||(गीता १८-४१ से ४४)

जिसमें शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति, ऋजुता, अध्यात्मा तथा विविध विषयों का ज्ञान और आस्तिक्य बुद्धि हो, उसे ब्राह्मणवर्ण का कहा जाता है | जिसमें शूरता, तेजस्वीता, धैर्य, दक्षता, युद्ध से न भागना, दान देना और शासन करने की प्रवृत्ति हो, वह क्षत्रियवर्ण का कहा जाता है | जिसमें कृषि, पशुपालन, और वाणिज्य व्यापार के प्रति रुचि हो, उसे वैश्यवर्ण के अन्तर्गत रखा गया है तथा जिसमें अधिक सोचविचार करने की प्रवृत्ति न हो, जो शारीरिक श्रम

और एक बँधे हुए जीवनक्रम में अधिक रूचि रखता हो, उसे शूद्रवर्ण का माना गया है | उपर्युक्त वर्णधर्मों को ही अधिकतर से स्वधर्म या स्वभावजन्य कर्म कहा गया है | व्यक्ति जिस वर्ण का होगा, उसी वर्ण का धर्म उसके लिये स्वधर्म होगा | इसका तात्पर्य यह है कि यदि ब्राह्मण में शूद्रत्व हो, तो वह शूद्र गिना जाने के योग्य है और यदि शूद्र में ब्राह्मणत्व हो वह ब्राह्मणपद का अधिकारी होता है | इस बात को समझाने के लिये महाभारत में सर्प-योनिप्राप्त नहुष की कथा आती है, जहाँ उसका युधिष्ठिर के साथ संवाद वर्णित है | युधिष्ठिर कहते हैं कि जिसमें सत्य, दान, क्षमा, शील, अनृशंसता, तप और दया ये सब गुण जिसमें हों, वही ब्राह्मण कहा जा सकता है | प्रत्युत्तर में सर्प बताते हैं, कि 'ऐसे लक्षण तो शूद्रों में भी मिलते हैं, तो जिन शूद्रों में ये लक्षण हों, उन्हें ब्राह्मण माना जा सकता है ?' युधिष्ठिर कहते हैं कि - शूद्रे तु यद् भवेत् लक्ष्म द्विजे तच्च न विधते |

न वै शूद्रो भवेत् शूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मण : ||

यतैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मण : स्मृत : |

यतैतन्न भवेत् सर्प ते शूद्रमिति निर्दिशेत् || (महाभारत वनपर्व १८०-२५,२६)

अर्थात् 'शूद्रों में भी यदि ये लक्षण मिलते हैं और द्विजों में यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि में यदि नहीं मिलते, तो उस शूद्र को शूद्र नहीं कहना चाहिए और न ब्राह्मण को ब्राह्मण | जहाँ ये लक्षण हों, उसे ही ब्राह्मण कहना चाहिए और जिसमें ये लक्षण न हों, उसे शूद्र कहना चाहिए |' इस पर सर्प पुनः प्रश्न करता है कि "जाति-जन्म को वर्ण का प्रमाण क्यों नहीं मानते ?" इसके उत्तर में युधिष्ठिर कहते हैं कि -

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते |

संस्कारात् सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः || (महाभारत वनपर्व १८०-३१)

अर्थात् 'हैं महासर्प, मनुष्यों में समानता रहने के कारण जाति अर्थात् जन्म की परीक्षा बहुत कठिन है | कौन किसकी सन्तान है, इसकी परीक्षा करना कठिन है, जबकि दुष्ट स्त्रियाँ व्यभिचार द्वारा वर्णों से सन्तान उत्पन्न कर लेती हैं,

इसलिये परीक्षा का मुख्य साधन आचार ही हैं | महाभारत में दूसरे स्थान पर भी यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में यही बात कही गयी है जैसे कि -

‘श्रुणु यक्षकुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् |

कारणं हि द्विजत्वे हा वृत्तमेव न संशयः ॥’ (वनपर्व ३१३-१०८)

अर्थात् ‘ हे यक्ष ! सूनो, ब्राह्मणत्व में कुल, स्वाध्याय या शास्त्रज्ञान, ये कुछ भी कारण नहीं हैं, केवल वृत्त-आचरण ही ब्राह्मणत्व का कारण हैं | हमारे शास्त्रकारों ने भी कहा है कि ‘आचारः परमो धर्मः’ -- अर्थात् आचरण ही श्रेष्ठ धर्म है | इसका समर्थन करते हुए हितोपदेशकार ने भी स्पष्ट किया है कि - ‘ज्ञानं भारः क्रियां विना’ | - बिना आचरण का ज्ञान भाररूप होता है, हस्तीस्नान और विधवा के आभूषण समान होता है | इस समस्त विवेचन का सार यह हुआ कि वर्ण जन्मगत नहीं, अपितु गुण और कर्मगत हैं | स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि ब्राह्मणत्व की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है | पर यह ब्राह्मणत्व जन्म से नहीं, गुण और कर्मों से मिलता है |

(५) वर्णव्यवस्था की आधुनिक व्याख्या - आजकी सामाजिक परिस्थिति में यदि हम वर्ण विचार करने जायेंगे, तो हमें विशेष कठिनाई का सामना करना पड़ेगा | फिर भी हम कह सकते हैं कि जिन्हें सामान्यतः चतुर्थ और तृतीय श्रेणी के कर्मचारी मानते हैं, वे शुद्रवर्ण के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं | इनके अन्तर्गत शरीरश्रम से जीविका उपार्जित करनेवाले मजदूर भी आ जाते हैं | जो द्वितीय और प्रथम श्रेणी के अधिकारी हैं, उन्हें क्षत्रियवर्ण का माना जा सकता है | व्यापार और उद्योग में लगे हुए तथा कृषि आदि के द्वारा आजिविका चलानेवाले लोग वैश्यवर्ण के माने जा सकते हैं | जो ईमानदारी और सच्चाई के साथ जीवन में त्याग को महत्त्व देते हुए समाज की सेवा करते हैं, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में नयी-नयी खोजों में लगे रहते हैं, उन्हें ब्राह्मणवर्ण के अन्तर्गत रखा जा सकता है | शिक्षकों में भी जिनकी शिक्षाकार्य के प्रति निष्ठा और लगन है तथा जिनका चरित्र मानवीय गुणों से युक्त है, वे तो ब्राह्मणवर्ण में रखे जा सकते हैं | पर जो शिक्षा के क्षेत्र में लाचारी के कारण आये हैं और शिक्षा जिनके लिये मात्र एक व्यवसाय है, वे शुद्र या वैश्य वर्ण के अन्तर्गत ही रखे जा सकेंगे | कालिदास ने भी इस बात का समर्थन करते हुए मालविकाग्निमित्रम् में कहा है कि -

‘यस्यागमः केवलजीविकाये तं ज्ञानयण्यं वणिजं वदन्ति ।’ (मालविकाग्निमित्रम् १-७) अर्थात् ‘ जिसकी विध्या केवल आजिविका प्राप्ति के लिये है, उसे ज्ञान विक्रेता बनीया कहते है ।’ इसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में जो लोग हैं, उनमें अधिकार की भावना के साथ यदि सेवा भी जुड़ी हो, ते वे क्षत्रियवर्ण के अन्तर्गत आयेंगे, पर जिन्हों ने राजनीति को भी एक व्यवसाय बना लिया है, वै वैश्यवर्ण के ही माने जायेंगे । स्वामी आत्मानंदजी के मतानुसार “ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णों में एक विशेषता यह है कि उनमें जोखिम उठाने का भाव होता है, जब कि शुद्रवर्ण में वह नहीं होता । शुद्र कोई खतरा नहीं उठाना चाहता, बँधे-बँधाये कर्म में लगाना चाहता है । मेहनतकश मजदूर की वृत्ति उसे जोखिम उठाने से रोकती है, उसमें महत्वाकांक्षा नहीं होती । ब्राह्मणवर्ण का व्यक्ति विध्या या ज्ञानप्राप्ति के लिये बड़े से बड़ा जोखिम उठाने में भी नहीं हिचकता । क्षत्रिय सत्ता पाने के लिये सभी की बाजी लगा देता है । वैश्य धन कमाने के लिये बड़े से बड़ा जोखिम उठाने को तैयार रहता हैं । इस तरह ब्राह्मणत्व में विध्या प्रियता, क्षत्रिय में अधिकार प्रियता और वैश्य में धन प्रियता होती है । किन्तु शुद्रत्व में विध्या, अधिकार या धन के लिये ऐसा आकर्षण नहीं होता कि खतरा मोल लेकर उसे पाने की चेष्टा की जाय । उसमें नियत काम करके जीवनयापन की ही वृत्ति होती है । ”

(६) वर्णों में ऊँच-नीच की भावना अप्राकृति - वर्णव्यवस्था के सारे विवेचन का निष्कर्ष यही है कि वर्णों को जन्म आधारित मानने से हम एकाधिकार और विशेषाधिकार के उस संकीर्ण दायरे में अपने को कैद कर ले रहे हैं, जिसने ‘अस्पृश्य’ जैसे शब्दों का आविष्कार किया और मनुष्य के साथ पशु से भी बदतर व्यवहार किया । स्वधर्म पालन हमें यहीं पढाता है कि वर्णों का भेद नैसर्गिक अवश्य है, पर उनमें ऊँच-नीच की भावना मनुष्यकृत है । शरीर के अंगों में भेद होना नैसर्गिक है, फिरभी हम सिर और पैर दोनों का समान ध्यान रखते हैं । ऋग्वेद के मंत्र को हम इस अर्थ में न ले कि ब्राह्मण जन्म से ही पूजा प्राप्त करने का अधिकारी होता है और शूद्र जन्म से ही प्रताड़ना का अधिकारी होता है । किन्तु श्रीकृष्ण की भव्यता और वर्णों के प्रति दिव्यता को देखकर यही केहना चाहिये की भगवान ने ही गुणों और कर्मों के भेद से चारों वर्ण बनाया हैं । स्वामी

विवेकानंद ने 'वेदान्त और विशेषाधिकार' पर इंग्लैंड के एक प्रसिद्ध भाषण में कहा था कि 'प्रत्येक समाज में भिन्नतायें होंगी | भिन्न-भिन्न कार्य भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा सम्पन्न होंगे, यही स्वाभाविक है | लेकिन जब ये विशेषाधिकार अपना मस्तक ऊँचा करें, उनके सिर पर चोट करो | उनके मतानुसार पूर्ण समानता यही प्रजातंत्र है | अतः एक प्रजातंत्र में भी आप चतुर्वर्ण्य की बुराईयों को छोड़कर रख सकते हैं | प्रत्येक समाज में यह है | वह बदलों नहीं यही मूल विचार है | विशेषाधिकार की भावना मानव जीवन की लिये हानिकारक है |'

उपसंहार - भगवान श्रीकृष्ण की स्वधर्म या वर्णविचारणा मानवस्पर्शी एवं शाश्वतकालीन है, यह निर्विवाद सत्य हैं | स्वधर्म का आधार भले ही गौणरूप से जन्म हो, पर मुख्यरूप से वह वृत्ति ही है | अर्जुन में इन दोनों का मेल था, तथा युद्ध ही अर्जुन का स्वधर्म था | भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन की द्रष्टि स्वधर्म- पालन की और खिंचते हैं और कहते हैं कि ऐसा अपने आप, बिना बुलाये, सिर पर आ जानेवाला युद्ध क्षत्रिय के लिये स्वर्ग का द्वार खोल देता है | भगवान यह भी कहते हैं कि -

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्यं सिद्धिं विन्दति मानवः' | (गीता १८-४६)

अर्थात् 'परमेश्वर की अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा पूजा करके मनुष्य परम सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है |' इस समस्त विवेचन का सार यही हुआ कि वर्ण जन्मगत नहीं अपितु गुण और कर्मगत हैं | वर्ण और जाति दोनों भिन्न हैं | मनुष्य को जाति जन्म से मिलती है, पर वर्ण उसे गुण और कर्मों के द्वारा मिलता है | वर्ण अलग-अलग अवश्य हैं, पर उनमें परस्पर श्रेष्ठता और कठिनता का भेद नहीं होना चाहिये | जो वेदमंत्र का हवाला देकर कहते हैं कि विराट पुरुष के मुख से निकलने के कारण ब्राह्मण बड़ा है और पैरों से निकलने के कारण शुद्र छोटा है तो वे उस मंत्र की हम गलत व्याख्या करते हैं | वहाँ पर मुख का बड़प्पन और पैर की क्षुद्रता नहीं दिखायी गई है, उसके द्वारा इन वर्णों के विशिष्ट गुणों और कर्मों का परिचय दिया गया है | वर्णों की भिन्नता का तात्पर्य यह नहीं लेना चाहिये कि कोई वर्ण बड़ा है और कोई वर्ण छोटा है | अपितु चारों वर्ण समाज में समान महत्त्व रखते हैं और सबको उन्नति के लिये समान अवसर

प्राप्त होने चाहिये | चारों के स्वस्थ समन्वय से ही समाज की सर्वांगीण उन्नति सम्भव है | हमारी वर्णव्यवस्था का यही सही स्वरूप है |

संदर्भग्रंथ सूचि :-

- (१) ऋग्वेद - अ.दे.शास्त्री, युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, गुजरात राज्य
अहमदाबाद, गुजराती संस्करण १९८९ |
- (२) महाभारत (भाग १-६) संपादक - पंडित किंजवाडेकर रामचंद्र शास्त्री,
प्रकाशक ओरियेन्टल बुक्स, प्रिन्ट को. नई दिल्ली द्वि. सं - १९७९
- (३) श्रीमद् भगवद्गीता - साधारण भाषा टीका सहित, गीताप्रेस गोरखपुर,
संवत् : २०७० |
- (४) गीता रहस्य - बालगंगाधरतिलक, हिन्दी भावानुवादक डो. मोहन बांडे -
२०१२
- (५) गीता तत्त्वचिंतन (भाग १,२) - स्वामी आत्मानंद, अद्वैताश्रम प्रकाशन
कोलकता २०११ |
- (६) भगवद्गीता का सार्वजनिक संदेश - स्वामी रंगनाथानन्द, भाग, १-२
रामकृष्ण मठ, नागपुर |
- (७) कालिदासप्रणीत मालविकाग्निमित्रम् - संपादक : प्रा. सुरेश दवे, सरस्वती
पुस्तक भंडार, अमदावाद १९९०-९१
- (८) गीतामृतम् - पाण्डुरंग शास्त्रीजी के प्रवचनों पर आधारित - सद्विचार दर्शन
ट्रस्ट मुंबई